DIGVIJAI NATH POST GRADUATE COLLEGE, GORAKHPUR-273001
Affiliated to : D.D.U. Gorakhpur University, Gorakhpur (U.P.)
☎ : 0551-233454 : 09792987700,
e-mail : digvijayans@gmail.com, dnpggkp@gmail.com,
website : www.dnpgcollege.edu.in

7.1.15

The institution offers a course on Human Values and professional ethics

पाठयक्रम

खण्ड-क -राष्ट्र गौरव

● राष्ट्र: अर्थ, अवधारणा एवं उसके घटक, राष्ट्रगौरव: अभिप्राय, अवधारणा एवं मूलघटक ● प्राचीन भारतीय राज्य व्यवस्था : राजतन्त्र एवं गणतन्त्र ● प्राचीन भारतीय समाज: संरचना तथा सामाजिक मूल्य ● भारतीय संस्कृति : अवधारणा एवं स्वरूप ● प्राचीन भारत के प्रमुख ग्रन्थ एवं साहित्य ● भारतीय संगीत एवं ललित कलाएँ: परम्परा, स्वरूप एवं उदाहरण ● भारत में भक्ति आन्दोलन : संक्षिप्त परिचय ● भारतीय अंक पद्धति: वैदिक गणित एवं ज्योमिति ● प्राचीन भारत में विज्ञान : धातु विज्ञान, रसायन विज्ञान ● भारतीय सैन्य इतिहास: सामान्य परिचय, महत्वपूर्ण युद्ध एवं युद्ध पद्धति। ● आधुनिक राष्ट्र,राज्य तथा राष्ट्रगौरव के घटक

खण्ड-ख -पर्यावरण अध्ययन

● पर्यावरणीय अध्ययन: परिभाषा, पर्यावरणीय जागरूकता की आवश्यकता एवं महत्व ● प्राकृतिक स्रोत : वनस्रोत , खनिज स्रोत , खाद्य स्रोत एवं ऊर्जा स्रोत ● पर्यावरणीय प्रदूषण : जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण, ध्वनि प्रदूषण, नाभकीय रासायनिक एवं प्लास्टिक प्रदूषण ● भारतीय साहित्य एवं परम्पराओं में पर्यावरणीय जागरूकता बोध तथा उसके उदाहरण ● वैश्विक तापीकरण (ग्लोबल वार्मिग) तथा जलवायु परिवर्तन (क्लाइमेट चेंज): प्रारम्भिक अध्ययन, कारण तथा प्रभाव

खण्ड-ग -मानवाधिकार अध्ययन

● मानवाधिकार : अर्थ एवं अवधारणा पाश्चात्य एवं भारतीय विचारों का ऐतिहासिक विकास ● मानवाधिकार मूल अधिकार तथा राज्य की नीति के निदेशक सिद्धान्तों में अन्तर्सम्बन्ध ● मानवाधिकार संरक्षण अधिनियम (1993) : सामान्य परिचय ● राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग एवं राज्य मानवाधिकार आयोग: सामान्य परिचय एवं कार्य पद्धति ● मानवाधिकार एवं निर्बल वर्ग: स्त्री, शिशु, वृद्ध एवं विकलांगों के मानवाधिकार

प्रश्न पत्र का स्वरूप

1. प्रश्न पत्र 100 अंकों का होगा। 2. प्रश्नपत्र के तीन खण्ड होंगे, जिनमें राष्ट्र गौरव के 40 तथा पर्यावरण अध्ययन एवं मानवाधिकार अध्ययन प्रत्येक से 30-30 प्रश्न होंगे। कुल 100 प्रश्न पूछे जायेंगे। 3. प्रश्नपत्र बहुविकल्पीय वस्तुनिष्ठ प्रकार कें होंगे।

स्नातक स्तर पर (कला, विज्ञान, वाणिज्य एवं कृषि वर्ग) के प्रत्येक विद्यार्थी के लिए इस पाठ्यक्रम का अध्ययन अनिवार्य है। विद्यार्थी को स्नातक प्रथम, द्वितीय या तृतीय वर्ष तक इस पाठ्यक्रम की परीक्षा को उत्तीर्ण कर लेना अनिवार्य। इस विषय के प्राप्तांक मुख्य विषयों के प्राप्तांक के साथ नहीं जोड़े जायेंगे। इस प्रश्नपत्र का उत्तीर्णांक भी 33 प्रतिशत होगा।

खण्ड -क

राष्ट्रगौरव

प्राचीन भारतीय ऋषि–चिन्तन की परम्परा की प्रमुख देन राष्ट्र एवं देश की संकल्पना है जिनमें भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता की गरिमामय भाव सन्निहित है। भारत की यह संकल्पना अन्य देशों की तुलना में सर्वाधिक पुरातन, पवित्र एवं पारम्परिक है। इसी विचार ने भारत को राष्ट्रीय गौरव प्रदान किया । भरत (जन) भारत (भूमि) एव भारती (संपत्ति) जैसी भावनाओं का उदय भी राष्ट्र शब्द से हुआ। राष्ट्र की भॉति विश्व, ब्रहमाण्ड, लोक–परलोक आदि की भी संकल्पना भी भारत के गरिमामय गाथा का गान करती है।

'राष्ट्र एक वैदिक शब्द है जिसका आदि उद्भव ऋग्वेद में उपलब्ध होता है। राष्ट्र शब्द संस्कृत भाषा के 'राजृ तथा ष्ट्रन' के संयोग से बना है जिसका सामान्य अर्थ दीप्ति, प्रकाश, शक्ति गति आदि है। ऋग्वेद में प्रार्थना की गयी है कि ''राष्ट्र तुमसे पृथक न हो, तुम राष्ट्र में स्थिर रहो, अपच्युत न हो, पर्वत की भॉति अविचल रहो, इन्द्र की भॉति ध्रुव बन खड़ें रहो और राष्ट्र को धारण करों।' ज्योति एवं प्रकाश का स्वामी देव सविता को स्वीकार किया गया है। देष सविता को राष्ट्र का स्वामी कहकर पुकारा गया है। वैदिक ब्राह्मण ग्रंथों में, अर्थर्ववेद में तथा कपिण्टल संहिता में यहॉ तक कहा गया है ''जो राष्ट्र (दीप्तिभाव) की कामना करते हैं, वे राष्ट्र भाव को मन से धारण करते हैं, वह स्वयं राष्ट्रमय तथा ज्योतिर्मय हो जाते है। इस प्रकार स्पष्ट होता है कि 'दीप्ति भाव' को ही राष्ट्र के रूप में स्वीकार किया गया। अतः राष्ट्र से तात्पर्य उस ऊर्जा और चेतना से है जो किसी भूमि पर निवास करने वालों में विद्यमान रहती है। इसी के आधार पर वह अपनी अस्मिता को चरितार्थ करता है, यही राष्ट्र की ऊर्जा उस राष्ट्र की चेतना है और यही चेतना उस राष्ट्र का गौरव है। भारतीय चिंतन में 'राष्ट्र' एक गौरवस्पद विचारधारा है। वैदिक मनीषियों ने इसकी गणना राष्ट्रीय इकाई के रूप में की है जो शाररिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक गुणों से अन्वित होकर ही पूर्ण होती है। भारतवर्ष एक ऐसा राष्ट्र है जहॉ भूमि को माता के रूप में सम्मान दिया गया है। यहॉ के निवासियों का इसके साथ संजीव सम्बन्ध है। 'वसुधैव कुटुम्बकम' तथा 'विश्वबन्धुत्व' के आदर्श को फलीभूत करने में भी राष्ट्र की महान भूमिका है।

राष्ट्र के घटक (प्रमुख तत्व) :–डॉ0 वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार राष्ट्र के तीन प्रमुख तत्व होते हैं – राष्ट्र की भूमि अर्थात उसका भौगोलिक विस्तार उस भूमि पर रहने वाला मनुष्य तथा उसकी संस्कृति, अर्थात भूमि जन एवं संस्कृति का राष्ट्र को यंशस्वी बनाने में प्रमुख योगदान है। इन्हें राष्ट्र की कसौटी माना गया है।

भूमि :– राष्ट्र का प्रथम घटक भूमि है। अथर्थ वेद के पृथ्वी सूक्त में भूमि को 'कामयुधा' (इच्छाओं को पूर्ण करनी वाली) के रूप में अभिहित किया गया है। इसी भूमि पर रहकर व्यक्ति अपने जीवन को सुरक्षित करता है। यदि यह भूमि ही नहीं होती तो उसके जीवन के आधार की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी क्योंकि इसी भूमि पर वह जन्म लेता है तथा उसका पालन–पोषण भी भूमि के संसाधनों का आश्रय प्राप्त कर होता है। भूमि को आधार बनाकर की पर्वत, राजा, प्रजा, वरूण, अग्नि, इन्द्र आदि प्राकृतिक शक्तियों सहगामी मानकर राष्ट्र की अवधारणा की गयी। भूमि का व्यापक रूप वहाँ वन–उपवन, नदियों, झरनों, पर्वतीय क्षेत्रों तथा पुण्य क्षेत्रों के रूप में परिलक्षित होता है। इसी भूमि पर बसने वाले पुत्रभाव से पूर्ण होकर एक राष्ट्र की धारणा का संवहन करते हैं।

जन :– मातृभूमि पर निवास करने वाले जन(मनुष्य) राष्ट्र का दूसरा घटक है। भूमि हो और जन न हों, तो राष्ट्र की कल्पना असंभव है। भूमि तथा जन दोनों के सम्मिलन से ही राष्ट्र का स्वरूप संवादित होता है। जन के कारण ही भूमि मातृभमि की संज्ञा प्राप्त करती है। पृथिवी (भूमि) माता है और जन सच्चे अर्थो में पृथिवी ((भूमि) का पृत्र है –

' माता भूमि' पुत्रोऽहं पृथिव्याः।'

– भूमि माता है, मै उसका पुत्र हूँ। जन के हृदय में इस सूत्र का अनुभव ही राष्ट्रीयता की कुंजी है। इसी भावना से राष्ट्र–निर्माण अंकुर उत्पन्न होते हैं। यही भावना जनाजन के हृदय में जागती है तब राष्ट्र–निर्माण के स्वर वायुमंडल में प्रसरित होने लगते हैं।

सस्कृति :–

राष्ट्र का तीसरा घटक जन की संस्कृति है। जन ने युगों–युगों में जिस सभ्यता का निर्माण किया है; वही उसका श्वासं प्रवास है। बिना संस्कृति के जन की कल्पना कबन्धमात्र है, संस्कृति ही जन का मस्तिष्क है। संस्कृति के विकास और अभ्युदय के द्वारा ही राष्ट्र की उन्नति संभव है। यदि भूमि, जन और संस्कृति विरहित कर दिये जायॅ तो राष्ट्र का लोप समझना चाहिए। जीवन के विहप का पुष्प संस्कृति है । संस्कृति के सौन्दर्य एवं सौरभ ने ही जन का जीवन सन्निहित है। जीवन के विकास की युक्ति संस्कृति के रूप में प्रकट होती है। ज्ञान और कर्म दोनों के पारस्परिक प्रकाश की संज्ञा संस्कृति है। प्रत्येक जन अपनी–अपनी विशेषताओं के साथ ही संस्कृति का विकास करता है। इस प्रकार समस्त न की संस्कृति के विकास का आधार राष्ट्र है। ये संस्कृतियॉ जन के साहित्य, कला, नृत्य गीत, आमोद–प्रमोद, रहन–सहन के ढंग आदि रूप में दृष्टिगोचर होते हैं। प्रत्येक व्यक्ति संस्कृति के आनन्द

पक्ष को स्वीकार करके आनन्दित होता है। इस प्रकार की उदार भावना ही विविध जनों से निर्मित राष्ट्र के लिए स्वास्थ्यकर है। यही राष्ट्र–संवर्द्धन का स्वाभाविक प्रकार है।

राष्ट्र गौरव का अभिप्राय एवं उसके घटक :–किसी राष्ट्र के गौरव का अभिप्राय उस राष्ट्र के द्वारा स्वीकृत उन तत्वों एवं साध्यों की अनुभूति से है जिनके आधार पर राष्ट्र के गौरव का स्वरूप निर्धारित होता है। ये तत्व श्रेष्ठता, स्वाभिमान, महानता, अखंडता, सांस्कृतिक एकता एवं उदान्त मूल्यों की स्थापना आदि है। शाब्दिक रूप में राष्ट्र तथा गौरव शब्दों का सम्मिलन रूप ही राष्ट्र गौरव है जिसका आशय गतिमानता तथा शाश्वतता है। राष्ट्र गौरव की अनुभूति कराने में अनेक मूर्त तथा अमूर्त तत्वों का समावेश होता है जिनकी उपस्थिति से राष्ट्र की उन्नति का प्रमाण मिलता हैं। ये तत्व इस प्रकार हैं –

1. सबल जनशक्ति
2. अनुकरणीय नेतृत्व आदर्श
3. भौगोलिक अवस्थिति
4. ऐतिहासिक विरासत
5. ऐतिहासिक परम्पराएँ
6. सास्कृतिक एवं बौद्धिक सम्पन्नता
7. कौशलात्मक युद्धक अभिरूचि
8. प्राकृतिक संसाधन एवं जलवायु

राष्ट्र गौरव के प्रमुख कारक :–राजा द्वारा संचालित राज्यव्यवस्था को राजतंत्र तथा जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संचालित शासन व्यवस्था को गणतंत्र, प्रजातंत्र या जनतंत्र के नाम से पुकारते हैं।

प्राकृतिक अवस्था में समाज धर्म द्वारा संचालित होता था। पुराणों एवं जैन ग्रंथों में कल्पवृक्षों का वर्णन प्राप्त होता है। बौद्ध ग्रंथों में यायावर वनचारियों एवं वनलताओं का उल्लेख मिलता हैं। इस स्थिति 'कृतयुग' की संज्ञा प्रदान की गई। आदिम व्यवस्था में मानव आखेट द्वारा खाद्य सामग्री एवं जीवनोपयोगी साधनों की व्यवस्था करता था। प्राचीन ग्रन्थों में इस बात के संकेत मिलते है कि ब्रह्मा ने राजधर्म बनाया, विष्णु ने अपने मानस से विरजस को राजा के रूप में उत्पन्न किया। मनु ने प्रियव्रत एवं उत्तानपाद नामक व्यक्तियों राजपद प्रदान किया। ब्राह्मण चिन्तकों ने राजा के देवत्व की परिकल्पना की। मनुस्मृति राजा को देवता घोषित किया गया। इसके विपरीत बौद्ध परम्परा में लोक द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होने की बात कही गयी। बौद्ध ग्रंथ दीघनिकाय में कहा गया है कि लोगों ने समाज में व्यापप्त अव्यवस्था से मुक्ति पाने के लिए एक व्यक्ति को राजा चुना, जिसे 'महाजनसम्मत' कहा गया। ऋग्वेद में शासकों के लिए 'राजन' शब्द का प्रयोग अनेकशः मिलता है। राजा अपने जन का नेतृत्व करता था। ऋग्वेद में 'जन' शब्द की आवृत्ति 275 बार हुई है। ऋग्वेद में राजत्व सूचक गोपा, गणपति, सम्राट अधिराट आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है। ऋग्वेद में गोवा शब्द का 'विश और जन के रक्षक के रूप में उल्लेख मिलता है। वही अन्ततः राजन का पर्याय बन गया। 'गोपा' शब्द का मूल अर्थ 'पशुओं का रक्षक'' था। ऋग्वेद में 'बलि' तथा 'बलिदृत' शब्दों का भी उल्लेख है। उत्तर वैदिक काल में एकराट शासन की अवधारणा विकसित हुई तथा कुरू, पांचाल, मत्स्य, कोसल, काशी, वल्लि, विदेह, शाक्य तथा मगध आदि राज्यों की स्थापना हुई। ऐतरेय ब्राह्मण में साम्राज्य, राज्य, स्वराज्य, भौज्य और वैराज्य नामक शासन प्रणालियों का उल्लेख है जो वैदिक संस्कृति के केन्द्र में दूर प्रतीच्य, उदीच्य एवं दक्षिणात्य क्षेत्रों में प्रचलित थी। उत्तरी बिहार में बज्जि संघ का उल्लेख, बौद्ध काल में मिलता है। यजुर्वेद की संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में रत्नियों का उल्लेख मिलता है जो राज्य परिषद के सदस्य होते थे। रत्नियों में पुरोहित, महिषी, सेनानी, राजन्य, सूत आदि सम्मिलित थे। कालानतर में रत्नी ही मंत्री के रूप में प्रतिष्ठित हुए । अर्थशास्त्र के रचना काल में ही साप्तांग सिद्धान्त एवं द्वादश राजमण्डल का सिद्धान्त विकसित हुआ। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में नीति–निर्धारक सदस्यों को ''मंत्रिणः'' कहा गया है जो 16 महाजनपदों में विशेष भूमिका निर्वहन करते थे। महाभारत में मालवों एवं क्षुद्रकों के एक संघ्ज्ञ 'अन्धक–वृष्णि संघ' का भी उल्लेख मिलता है।

प्राचीन भारत में सामाजिक संरचना के कई स्तर थे जिनका आदिम बीज रूप ऋग्वेदीय 'सरवा' के सामाजिक सम्बन्ध में निहित है। सरवाओं का पारस्परिक सामाजिक उत्तरदायित्व रहता था, यथा आपत्ति या युद्ध के अवसर पर एक दूसरे की सहायता करना इनका परम कर्तव्य था। ऋग्वेदीय समाज का एक स्तर और्य दस्यु एवं दासों का था। ऋग्वेदीय आर्य विभिन्न जनों जैसे चर्षण और कृष्टि आद में विभक्त थे। दास या दस्यु भी आर्य थें, लेकिन वे अवैदिक थे।

ऋग्वेदीय युग में वर्णव्यवस्था :–ऋग्वेद के पुरूष सूक्त में चार वर्णो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र का केवल एक बार उल्लेख हुआ है जो विराट पुरूष के अंगस्वरूप थे किन्तु कालान्तर में चार्तुर्व्य के रूप में इसका प्रयोग बढ़ता ही गया। इसका विभाजन गुण एंव कर्म पर आधारित था। ब्राह्मण शब्द का प्रयोग प्रतिभावान या गुणवान, राजन्य शब्द का प्रयोग क्षत्र (रक्षक), वैश्य का प्रयोग पणि अर्थात पैसे या रूपये का लेनदेन करने वाला तथा शूद्र शब्द का प्रयोग परिचारक वृत्तिका वालों के लिए हुआ है। इन सबका एक संगठित परिवार था जो आश्रम व्यवस्था का पोषक था। व्यक्ति का जीवन चाराश्रमों, बह्मचर्य गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संयास में विभक्त था। धर्म, अर्थ काम तथा मोक्ष को प्राप्त करना ही इनका पुरूषार्थ था क्योंकि पुरूषार्थ की चरम स्थिति ही मोक्ष थी। वैदिक समाज मातृस्त्तात्मक था।

'संस्कृति' शब्द संस्कृत भाषा के सम उपसर्ग से पूर्ण 'कृ' धातु से निष्पन्न जिसका तात्पर्य परिष्कृत अथवा परिभार्जित

है। सामान्य रूप में संस्कृति संस्कारित जीव की प्रक्रिया का नाम है। संस्कृति के अन्तर्ग ज्ञान–विज्ञान, विश्वास, रीति–रिवाज, नैतिक मूल्य तथा यम–नियम आदि बाते सम्मिलित होती हैं जिन्हें मानव समाज सहज रूप में स्वीकार करता है। संस्कृति में संस्कार मुख किया है इसीलिए कुछ भाषा विद संस्कारों के परिणाम तथा भाव को ही संस्कृति कहते हैं। वास्तव में पशुत्व से मनुष्यत्व की पूरी प्रक्रिया संस्कृति के माध्यम से ही सम्पन्न होती हैं। भारतीय संस्कृति का रूप समन्वयवादी एवं विलक्षण ऐक्यवादी है। विष्णु पुराण में इस मत का विशुद्ध उल्लेख है। भारतीय संस्कृति मानवीय एवं दैवीय गुणों का सामन्जस्य कर जीवन को जीवंत, प्राणदायक, मोक्षदायक एवं वैश्विक बनाती है। भारत के राष्ट्र चिन्ह का बोध वाक्य ही 'सत्यमेव जयते' है। यह संस्कृति 'सर्वेभवन्तु सुखिनः' की विचारधारा को बल प्रदान करती है ।

भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अत्यन्त सुदीर्घ परम्परा रही है। इसके परिज्ञान से मानव अपने जीवन को सफल एवं सुव्यवस्थित करता रहा है। भारतीय सम्यता एवं संस्कृति की सम्पूर्ण विरासत को वैदिक एवं लौकिक दो भागों में विभक्त किया गया है। वैदिक साहित्य अर्थात् ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के अंतिम कड़ी के रूप में संहिता, ब्रह्मण ग्रंथ, आरण्यक तथा अन्त मे उपनिषद का क्रम आता है। लौकिक साहित्य में रामायण तथा महाभारत अर्थशास्त्र आदि का स्थान आता है। रामायण आदि कवि बाल्मीकि, महाभारत महर्षि वेदव्यास तथा अर्थशास्त्र कौटिल्य की महत्वपूर्ण एवं प्रेरणादायक कृतियॉ हैं । कौटिल्य का विष्णुगुप्त तथा चाणक्य (चणक का पुत्र) नाम भी मिलता है। महाभारत में पर्वो(खण्डो) की संख्या 18, रामायण में काण्डों की संख्या 7, तथा अर्थशास्त्र में अधिकरणों की संख्या–15 है। रामायण आदि काव्य माना जाता है जिसमें 24 हजार श्लोक हैं। महाभारत में कतिपय विद्वान श्लोकों की सख्या 8800 तथा कतिपय विद्वान 24 हजार मानते है। महाभारत के रचनाकार वेद व्यास को कृष्ण–द्वेपायन की संज्ञा से महिमामंडित किया गया हैं। अर्थशास्त्र में श्लोकों की संख्या 6000 मानी गयी है। इसमें सामाजिक आर्थिक तथा राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित सभी आवश्यक विषयों का उचित मार्ग दर्शन उपलब्ध है। 8 पुराणों की रचना भी वेदव्यास ने की थी जिसमे भागवत पुराण सर्वाधिक प्रचलित अवस्था में है।

मानव एक संवेदनशील प्राणी है। उसकी सहज प्रवृत्ति है अभिव्यक्ति। वह अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने का कोई न कोई माध्यम खोज ही लेता है। कभी वह अपनी भाव–भंगिमा में परिवर्तन करके, कभी स्वरों के उतार–चढ़ाव से, कभी किसी फलक पर कुछ अंकित करके या किसी पाषाण खण्ड को काट–छाट कर अपनी अनुभूति को व्यक्त करता है। प्रौगैतिहासिक काल में गायन, वादन एवं नृत्य आदि कलाएँ प्रचलित थी। कला शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग ऋग्वेद में मिलता है। उस काल में चित्रकला, संगीकला, मूर्तिकला एव स्थापत्य कला आदि सभी विधाएँ विकसित हो रही थीं । वैदिक काल का सामवेद संगीत युक्त है। उसके मंत्रों का पाठ संगीत मय होता था। यजुर्वेद के 30वे अध्याय में 64 कलाओं का सर्वप्रथम उल्लेख मिलता है। इसको वात्स्यायन ने अपने ग्रंथ में 'कामसूत्र' में व्यक्त किया है। इसी पर यशोधर पंडित ने 'जयमंगला' नामक टीका भी लिखा है। सॉची का स्तूप, भरहुत में यक्षिणी की आदमकद प्रतिमा तत्कालीन स्थापत्य कला के गरिमामय आर्दश हैं। कुषाण एवं सातवाहन काल में ये कलाएँ चरमोंत्कर्ष पर थी। गांधार की कला एवं शैली तथा मथुरा शैली का मनोरम दृश्य भी इस काल के कला प्रेम को प्रकट करता है। विश्व विख्यात अजन्ता एवं एलौरा की गुफाओं में चित्रित दृश्यों एवं घटनाओं का विवरण तत्कानीन स्थापत्य कला के सुंदर उदाहरण है। भारतीय साहित्य में तथा समाज में संगीत कला का भी महत्वपूर्ण स्थान रहा है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र, मतंडमुनि का वृहद्देशी , जयदेव कृत गीत गोविन्द तथा शारंगदेव कृत संगीत रत्नाकर इसकी अनुपम निधियॉ हैं। लोचनकृत 'राग तरंगिणी' उत्तर मध्य काल की प्रथम पुस्तक है। इस प्रकार आदिकाल से लेकर आधुनिक काल तक ललित कलाओं की सशक्त परम्परा मिलती है। जिस पर प्रत्येक भारतीय गर्व कर सकता है।

धार्मिक गतिविधों तथा इसके केन्द्र भी राष्ट्र–गौरव के प्रमुख घटक के रूप में मान्य है। धार्मिक भावना एवं परम्परा के कारण भी राष्ट्र–गौरव की भावना को वलवती करते हैं। इसका प्रभाव भौगोलिक आयामों, नदियो, झरनों आदि पर पड़ता है। राष्ट्र की सम्पन्नता एवं समृद्धि भी राष्ट्र–गौरव की महत्वपूर्ण प्रतिकृति होती है। धार्मिक जीवन के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण भूभाग में गौरव की भावना को बल प्रदान करते हैं जबकि विनिमय प्रणाली प्रत्येक समुदाय को आपस में जोड़ती है। इन भावनाओं के विकास से राष्ट्रगौरव की भावना को बल मिलता है। तुलनात्मक रूप से राजनीतिक स्थिरता, गतिशीलता, सौहार्दपूर्ण और स्वस्थ राजनीति परिवेश राष्ट्र गौरव के विषय है। निरन्तर विकास के पथ पर अग्रसर इस राजनीति और भावनात्मक यर्थाथ को समकालीन विश्व में चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है फिर भी ये आत्म निर्भरता का सम्बल ग्रहण किये हुए है। आर्थिक विषयों की प्रबलता, संयुक्त राष्ट्र की महत्ता, संचार तकनीकि का विस्तार, पर्यावरण और मानव अधिकारों के प्रति वैश्विक संचेतना किसी राष्ट्र की सोच को गौरवमय रूप प्रदान करते हैं।

राष्ट्रगौरव

1. राष्ट्र शब्द का प्राचीनतम उल्लेख किस ग्रंथ में है ?
(DDU-2018,2019)(SU-2018)

(A) अथर्ववेद (B) सामवेद
(C) ऋग्वेद ☑ (D) विष्णु पुराण

खण्ड -ख

पर्यावरण

पर्यावरण शब्द परि उपसर्ग तथा आवरण शब्द से बना है जिसका शब्दकोशीय अर्थ है–'आस–पास या पड़ोस, मानव, जन्तुओं या पौधों की वृद्धि एवं विकास को प्रभावित करने वाली वाह्य दशाएँ, कार्यप्रणाली तथा जीवन–यापन की दशाएँ।''

अर्थात् किसी स्थान विशेष में मानव के आस–पास भौतिक वस्तुओं, स्थल, जल, मृदा, वायु का आवरण, जिसके द्वारा मनुष्य सब ओर से धिरा होता हो को पर्यावरण कहा जाता है। दूसरे शब्दों में ''परि'' का अर्थ सब ओर तथा आवरण शब्द का अर्थ ढ़कना है। इस प्रकार पर्यावरण उन समस्त वस्तुओं को इंगित करता है जिनके द्वारा मनुष्य प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से आवेष्टित तथा आवृत होता है।

मैकाइवर आर0एम0 के अनुसार ''पृथ्वी का धरातल और उसकी प्राकृतिक दशाएँ–प्राकृतिक संसाधन, भूमि, जल, पर्वत, मैदान, खनिज पदार्थ, पेड–पौधे, पशु तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियाँ जो पृथ्वी पर विद्यमान होकर मानव–जीवन को प्रभावित करती हैं, पर्यावरण के अन्तर्गत आती हैं।''

भारतीय दर्शन के अनुसार प्राचीन ग्रंथो में पर्यावरण के स्थान पर प्रकृति तथा सृष्टि शब्द का प्रयोग किया गया है। वस्तुतः इसीलिए धरातल पर मानव के चतुर्दिक व्याप्त प्राकृतिक, सांस्कृतिक व पारिस्थैतिकीय कारकों के आवरण को पर्यावरण की संज्ञा दी जाती है।

पर्यावरण की प्रकृति से समता की जाती है, जिसके अन्तर्गत पृथ्वी के भौतिक घटक (स्थल, जल, वायु, मृदा आदि) को सम्मिलित किया जाता है। ये विभिन्न जीवों को आधार प्रदान करते हैं तथा उन्हें प्रभावित भी करते हैं।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि पर्यावरण के अन्तर्गत जैविक एवं अजैविक कारकों के पारस्परिक प्रभावों का अध्ययन होता है।

पर्यावरण के घटकः–

1. जैविक पर्यावरण – मानव, जीव–जन्तु तथा वनस्पतियाँ आदि

2. अजैविक पर्यावरण– मिट्टी, खनिज, जल, वायु आदि।

3. सांस्कृतिक पर्यावरण – अधिवास, आर्थिक–क्रियाकलाप, राजनीतिक व्यवस्था आदि।

पर्यावरण का सापेक्ष महत्व एवं उद्देश्य :–

क्या हम जल व वायु जैसे मूल–भूत आवश्यकताओं को छोड़कर जीवन की कल्पना कर सकते हैं ? इसका उत्तर होगा – 'नही' क्योंकि पर्यावरण का प्रत्येक घटक किसी न किसी रूप में मानव जाति के कल्याण में तत्पर है। पर्यावरण से हमें वायु मिलता है जिससे हम साँस लेते हैं । वायु ही प्राण है ; अतः वायु के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं की जा सकती है। जल प्रकृति का ऐसा घटक है जिस पर केवल मनुष्य ही नहीं अपुति पर्यावरण के अन्य घटक भी निर्भर हैं। जल हमारी मूलभूत आवश्यकता है। मनुष्य जल का उपयोग केवल प्यास बुझाने के लिए ही नहीं करता अपितु अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी करता है। ऊर्जा– उत्पादन, वन–सम्पदा,नदियाँ, सागर, बादल तथा जलाशय सभी जल के परिवर्तित रूप है जिनमें विकास कार्य सम्पन्न होते हैं। पृथ्वी का लगभग 2/3 भाग जल से पूर्ण है जो किसी न किसी रूप में मानव–जीवन का सहचर है। पर्यावरण–प्रदूषण के कारण जलवायु सम्बन्धी भिन्नता केवल भारत ही नहीं अपितु समस्त विश्व के लिए एक जटिल समस्या के रूप में उभर रही है।

वनस्पति जगत तो पर्यावरण द्वारा मानव–जाति को दिया गया वरदान है। वनस्पतियाँ वायुमंडल में व्याप्त अशुद्ध गैसों को शोषित कर आक्सीजन उत्पन्न करती हैं जो मानव–जीवन को दीर्घायु की ओर अग्रसर करते हैं। इस प्रकार वनस्पतियाँ पर्यावरण शुद्धिकरण का उत्तरदायित्व संभालती हैं। वे हमें समस्त भोज्य पदार्थो की आपूर्ति करती हैं। वनस्पतियाँ मृदा को अपरदन (कटाव) से भी रक्षा करती हैं। वे अपने तनों एवं जड़ों के द्वारा मृदा को जकडकर अपरदन से उसकी रक्षा करती हैं । भूमि की उर्वरा–शक्ति के संरक्षण में भी वनस्पतियों का विशेष योगदान है। वनस्पतियों को लुई थामस ने पृथ्वी का कवच कहा है। लुई थामस ने पृथ्वी को जीवित कोष कहा है और उसके चारों ओर के वातावरण को उसका कवच बताया है। वातावरण पृथ्वी के सतह का वह कवच है जिसमें प्रकृति की अमूल्य निधियाँ वायु, जल तथा प्रकाश आदि निहित है। प्रकृति की इन अमूल्य निधियों को शुद्ध बनाने रखने के लिए इन्हें क्रियाशील रखना अति आवश्यक है। प्रकृति की स्वचालित कार्य व्यवस्था में यदि मानवीय क्रिया कलापों से कोई व्यवधान आता है तो न केवल एक संसाधन की क्षति होती है अपितु समस्त वायुमण्डल, जीवनमण्डल, स्थलमण्डल एवं जल मण्डल में अन्तर्निहित तथा अन्तर्सम्बन्धित कियाएँ भी प्रभावित होने लगती है क्योंकि सभी मण्डल पृथ्वी के कवच को कार्यशील एवं संगठित बनाये रखने में समान रूप से योगदान करते हैं।

पर्यावरण से केवल मानव ही नहीं प्रभावित होता है अपितु मानव–जीवन के पंच तत्व (क्षति, जल,पावन, गगन, समीर) भी असंतुलित होने लगते हैं यदि इन तत्वों में से एक भी तत्व क्षीण या दूषित होता है तो शनैःशनैः समस्त जीवलोक प्रभावित होने लगता है। विनाशकारी भूकम्प, बाढ़, तूफान महामारियाँ आदि इसी के परिणाम है। मानव की आर्थिक विकास के

लिप्सा ने पर्यावरण सम्बन्धी जिन समस्याओं को जन्म दिया है उनमें से कुछ इस प्रकार हैं –

1. पर्यावरण–प्रदूषण जीवन समस्याएँ
2. प्राकृतिक प्रकोप जनित समस्याएँ
3. सांस्कृतिक समस्याएँ

पर्यावरण की समस्यायें औद्योगिक तथा तकनीकी विकास से उत्पन्न होती है। अतः हमें इसके सुधार का प्रयास करना चाहिए। स्टाकहोम (स्वीडन की राजधानी) में इसे 16 जून 1972 में 100 से अधिक देशों के सम्मेलन में पर्यावरण–गोष्ठी का आयोजन किया गया। पर्यावरणीय अज्ञानता एवं उपेक्षा से हम पृथ्वी के शरीर को विकृत कर क्षति–ग्रस्त कर रहे हैं। मानव में पर्यावरणी सुरक्षा के लिए शान्तिपूर्ण मन से सोचने और गंभीरतापूर्वक कार्य करने की इच्छाशक्ति का होना अनिवार्य है। पर्यावरणीय लक्ष्य को प्राप्त करने हेतु सभी नागरिकों एवं समुदायों को सार्वजनिक प्रयासों के माध्यम से न्याससंगत एवं सुसम्मत बनाना होगा। ब्राजील के रियाडीजेनेरो शहर में संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा पर्यावरण एवं विकास सम्मेलन (पृथ्वी सम्मेलन) 3 से 10 जून 1992 को 70 शासनाध्यक्षों के सहयोग से सम्पन्न हुआ।

केन्या की राजधानी नैरोबी में 10 से 18 जून 1962, जापान के क्योटो शहर में सितम्बर 1997, दक्षिण अफ्रीका के जोहान्सवर्ग शहर में 26 अगस्त से 4 सितम्बर 2002 तक पर्यावरण–सम्मेलन हुआ जिसमें पर्यावरण प्रदूषण एवं उसके निदान हेतु अनेक सुधारों का सृजन किया गया तथा पूर्व योजनानुसार पर्यावरण–सुरक्षा और सुधार के कार्यक्रमों को और प्रभावी बनाने का निर्णय लिया गया। जनसंख्या वृद्धि तथा अशिक्षा ने भी पर्यावरण की सुरक्षा में कई बाधाएं उत्पन्न की हैं। अतः इनके संदर्भ में उचित निर्णय एवं मंथन की आवश्यकता है। मानव अपने पर्यावरण का रक्षक तथा भक्षक दोनों है। अतः उसे ही भौतिक स्थिरता, बौद्धिक दृढ़ता, नैतिकता, सामाजिकता तथा आत्मिक विकास से पर्यावरण की सुरक्षा करनी होगी। उसे ऐसा कोई कर्म नहीं करना होगा जिससे उसका जीवन तथा समस्त प्राणि–जगत का जीवन संकटापन्न हो जाय तथा विनाश की स्थिति उत्पन्न हो जाय।

पर्यावरणीय समस्याओं को समझने के लिए तथा उसके निवारण के लिए समस्त मानवों को जागरूक होना अत्यावश्यक है। पर्यावरण सुरक्षा एवं सरक्षण विषय, शोध, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सक्रिय रहना आवश्यक है। तकनीकि विकास तथा उसके परिणामों को ध्यान में रखकर ही मानव को अपने क्रिया–कलापों को क्रियाशील रखना होगा।

आशा है पूरे विश्व में लोगों के इस दिशा में संचित एवं सक्रिय होने से पर्यावरण–विषयक समस्याओं का निराकरण होगा तथा मानवसमाज का भविष्य उज्जवल होगा। महाकवि जय शंकर प्रसाद के शब्दों में –

"शक्ति के विद्युत–कण जो व्यस्त,
विकल बिखरे हो निरूपाय।
समन्वय उनका करे समस्त,
विजयिनी मानवता हो जाय।"

शिक्षाएँ –

पेड़ो को मत काटो क्योंकि वे प्रदूषण दूर करते हैं।"
– ऋग्वेद

"आकाश को व्याप्ति न करो तथा पर्यावरण को प्रदूषित मत करो। – यजुर्वेद

"वनों को नष्ट करने का काम राज्य को नष्ट करने के समान है तथा वनों को लगाना राज्य का निर्माण करना है जिससे सबका कल्याण होता है। पशुओं की रक्षा पुनीत कर्तव्य है। " – चरक संहिता

"हम जो करते है उसका परिणाम अवश्य प्राप्त होता है। कर्म एवं उसके परिणाम का उत्तरदायित्व कर्ता का ही है।"
– अथर्ववेद

आधुनिक युग में पर्यावरण संरक्षण के प्रति जो जागरूकता लोगों में परिलक्षित हो रही है वह स्वार्थपरक प्रौद्योगिकी के फलस्वरूप उत्पन्न पर्यावरणीय जागरूकता के प्रतिकूल अराजकता की प्रतिक्रिया मात्र है। अतः आवश्यक है कि हम प्रकृति की वैज्ञानिकता एवं प्रौद्योगिकी को भी समझें और यह अनुभव करें कि हम सभी का प्रकृति से घनिष्ठता एवं अटूट सम्बन्ध है। अतः यदि हमें जीवित रहना है तो 'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा' (त्यागपूर्वक उसका (प्राकृतिक सुविधायें) का उपभोग करों) कि नीति का अनुसरण करना होगा। हम अमृत पुत्र है यह बोध ही हमारी प्रकृति की संरक्षा एवं पर्यावरण की सुरक्षा का मूलाधार है।

पर्यावरण अध्ययन

1. "पर्यावरण एक अमूत वस्तु" हैं यह कथन किसका हैं?

(A) टांसले (B) हरकोविट्ज
(C) पिस्बर्ट (D) डेविस ☑

2. पर्यावरण को वाह्यशक्ति किसने कहा हैं ?

(A) रॉस ☑ (B) हरकोविट्ज
(C) पार्क (D) सेरोकिन

3. विश्व पर्यावरण दिवस कब मनाया जाता है ?
(DDU-2016,2019)(SU-2018,2019)

(A) 20जून (B) 25 अगस्त
(C) 30 मई (D) 5 जून ☑

4. पर्यावरण को ऊर्जा प्राप्त होती है ?
(SU-2018,2019)

(A) सूर्य से ☑ (B) कोयला से
(C) पेट्रोलियम पदार्थो से (D) परमाणु ऊर्जा से

खण्ड -ग

मानवाधिकार

परिचय :– पृथ्वी पर सृष्टि और जीवन के सभी घटकों में 'मानव' की श्रेष्ठता ध्रुव सत्य है किन्तु यह श्रेष्ठता का यह आदर्श तब अपवित्र हो जाता है जब मानव ही मानव का उत्पीड़न, दमन, शोषण और बंचन करता है। मानव के साथ मानव के व्यवहार के गर्भ से ही 'मानव अधिकार अवधारणा' का जन्म हुआ। एक ऐसी उच्चतर व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई जो मानव को उसकी गरिमा के विरूद्ध कार्यो व अन्यायों से प्रतिरक्षित कर सके। नैसर्गिक रूप से समान होने पर भी सामाजिक, आर्थिक, पारिवारिक तथा राजनीतिक कारणों से अन्याय और विषमताओं का शिकार होने वाला मानव मूलभूत अधिकारों का स्वतंत्र रूप से अधिकारी बन सके। यही मानव अधिकारो का सार है।

मानव जाजि के इतिहास में मानवाधिकार का अभियान एक सर्वाधिक सशक्त विचार धारा है। संगठित एवं सशक्त मानव–समूहों द्वारा मानव का उत्पीड़न, दमन, शोषण एव वंचन एक स्वाभविक प्रक्रिया रही है। अतः इससे मुक्ति के साधन के रूप में मानवाधिकार आंदोलन मूलतः सत्ता की निरंकुशता व स्वेच्छाचरिता के विरूद्ध एक ऐतिहासिक अभियान है।

मानवाधिकार का अर्थ :–

'मानवाधिकार' मानव के ऐसे अधिकार है, जो मानव को बिना भेद–भाव के जीने का अधिकार प्रदान करते हैं। मानवाधिकार नैसर्गिक आधार हैं। इन्हें ऐसे अधिकार भी कहा जा सकता है जिन्हें न्याय की अपेक्षाओं के कारण प्रवर्तनीय व निश्चयात्मक अधिकारों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय विधि–व्यवस्थाओं में अनिवार्यतः मान्यता प्राप्त है। यदि किसी विधि प्रणाली में मानव अधिकार संरक्षित नहीं है, तो उस विधि–प्रणाली को एक सभ्य समाज की प्रणाली (व्यवस्था) स्वीकार करना असंभव होगा। अतः मानव के सर्वांगीण विकास के लिए जिन अनुकूल परिस्थितियों की आवश्यकता है, उनकी समग्रता ही मानवाधिकार है।

मानवाधिकार की अवधारणा :–

मानवाधिकार की मूलधारणा का मूलाधार मानव है। मानव की अनन्त संभावनाओं, इच्छाओं एवं क्षमता को समझे बिना मानव अधिकारों की अवधारणा स्पष्ट नहीं हो पाती। नैतिक, आध्यात्मिक एवं भौतिक घटकों का उदात्त सम्मिश्रण तथा समग्रता ही मानव अधिकार की अवधारणा है। किसी भी सांवैधानिक व्यवस्था में मानव अधिकरों की मान्यता, संरक्षण एवं प्रवर्तन हेतु उपबन्ध किया जाना राज्य का परम कर्तव्य है। 'मानवअधिकार' शब्द बीसवीं शताब्दी को देन है। जबकि यह अवधारणा प्राचीन है। दो विश्वयुद्धों में मानव उत्पीड़न व अत्याचार की विभीषिका ने मानव के प्रति इस विचारधारा को जन्म दिया और राज्यों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठन 'संयुक्त राष्ट्र संघ'' ने ''मानव अधिकार'' शब्द का प्रयोग किया जिन्हें विश्व समुदाय के सभी राष्ट्रों ने स्वीकार किया। मानव अधिकार की अवधारणा का सार यह है कि सभी अधिकार समस्त मानवों के लिए है। यह अधिकार सार्वभौम, अविभाज्य है। सभी के लिए समता, स्वतंत्रता, सामाजिक सुरक्षा, आर्थिक राजनीतिक न्याय व मानव–गरिमा की रक्षा इस अवधारणा का आधार बिन्दु है।

भारतीय दर्शन में मानव अधिकार की अवधारणा का मूल भूत सिद्धान्त 'सर्वे भवन्तु सुखिः' व 'वसुधैव कुटुम्बकम् ' है। ये विचार भारतीय संस्कृति के और भारतीय दर्शन के आधार स्तंभ है। महर्षि बाल्मीकि ने अपने अमर काव्य 'रामायण' में न्याय, समता, 'विश्वबन्धुत्व' जैसे मानवीय मूल्यों की स्थापना पर बल दिया।

ब्रिटिश शासन काल मानव अधिकारों की दृष्टि से 'अंधकार काल' था। ब्रिटिश भारत में भारतीयों की गरिमा के प्रतिकूल आचरण व दमन की पराकाष्ठा थी। जलियॉवाला बाग नरसंहार इसका प्रमुख साक्ष्य है। भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम मानव–अधिकारों की रक्षा के लिए किया गया प्रथम प्रयास था।

भारतीय मानव अधिकार दर्शन के चार प्रमुख स्तम्भ– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष है। वास्तविक रूप में ये पुरूषार्थ अन्तःकरण की स्वतंत्रता व अधिकारों के मूलभूत कारक हैं जिनकी प्राप्ति उचित मानवाधिकारों को प्राप्त किये बिना असंभव है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के 1927 के अधिवेशन में पंडित मोती लाल नेहरू द्वारा तैयार किए गए स्वराज के संविधान में उन्नीस मूल अधिकारों का उल्लेख किया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत के उच्चतम न्यायालय ने मानव अधिकारों की विशद व्याख्या करके मानव अधिकार विधि शास्त्र का निर्माण किया, जो अद्वितीय है। साथ ही मानव अधिकार संरक्षण अधिनियम, 1993, राष्ट्रीय मानव अधिकार आयोग, राज्यों के मानव अधिकार आयोग की भी स्थापना मानव अधिकारों की रक्षा के लिए ही हुई। रूस की 1917 की बोलशेविक क्रान्ति तानाशाही के विरूद्ध मानवअधिकारों का ही संघर्ष था। अठ्ठारहवी शताब्दी में फ्रेंच एव अमेरिकी क्रान्तियों के पश्चात 'बिल आफ राईटस' का निर्माण इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए ही था। बरसाई की संधि (1919) के अन्तर्गत अल्पसंख्यकों के संरक्षण की विविध संधियॉ अन्तर्राष्ट्रीय रेडक्रास आन्दोलन में युद्धों में मानवीय व्यवहार के सिद्धान्त की पुष्टि, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के 1920 से आरम्भ हुए अनेक अभिसमय एवं संस्तुतियॉ, 1926 का 'दासता अभिसमय' इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है। वर्ष 1945 में संयुक्त राष्ट्र की स्थापना के साथ ही मानव अधिकार के एक युग का आरम्भ हुआ था। प्रत्येक राष्ट्र द्वारा संयुक्त राष्ट्र सभा द्वारा अनुमोदित 10 दिसम्बर को 'मानव अधिकार

दिवस' के रूप में मनाया जाता है।

जहॉ एक ओर मानव अधिकारों की अवधारणा का क्रमिक विकास हुआ ; वहीं दूसरी ओर मानव के विभिन्न नयी चुनौतियों और संकट पैदा हुए। सर्वाधिक घातक और चिन्ताजनक आतंकवाद ,नस्लवाद, क्षेत्रवाद, अलगाववाद, वैश्वीकरण तथा प्रौद्योगिकी के दुरूपयोग हैं। जब तक मानव अधिकार व मानव गरिमा के भाव लोकाचार में स्थापित नहीं होते हैं और मानव अधिकार की संस्कृति स्थापित नहीं होती है, तब तक मानव अधिकार विधान घोषणाएँ तथा अन्तर्राष्ट्रीय मानक निष्प्रभावी ही रहेंगें। मानव कर्तव्यों के निष्पक्ष पालन से मानव अधिकार मूर्त रूप प्राप्त कर सकेंगे। मानव अधिकार के क्षेत्र में कतिपय ऐसे वर्ग है जो अब भी उपयुक्त रूप से सुरक्षित नहीं हैं, जिन्हें हम दुर्बल वर्ग की संज्ञा दे सकते हैं। मानव अधिकर का आंदोलन तब तक पूर्ण और प्रभावी नहीं होगा, जब तक हम उनकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध न करें। यथा बाल, वृद्ध, महिलाओं तथा समाज के कमजोर वर्ग। सभ्य और सुसंस्कृत समाज के लिए इनकी सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध अत्यावश्यक है। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्ति के लिए समग्र विश्व में वृद्ध वर्ष सन् 1999, अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष सन् 1981, अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष सन् 1975, को मनाया गया था जिसकी परम्परा को बनाये रखना हम सबका पुनीत कर्तव्य है।